@2025 International Council for Education Research and Training 2025, Vol. 04, Issue 01, 23-32
ISSN: 2959-1376 DOI: https://doi.org/10.59231/SARI7775

प्राचीन भारत की पृथक विशेषता

नायक, मृगेश एम.

एसोसिएट प्रोफेसर , एम.एम.चौधरी आर्ट्स कॉलेज

सार

भारत में सभ्यता का प्राकट्य १९२१ मैं हुआ। इसके पूर्व तक यह विश्वास किया जाता था कि वैदिक संस्कृति भारत की प्राचीनतम संस्कृति है जिसका जन्म ईसा से हजार वर्ष पहले हुआ था। १९२१ मैं अचानक रवि नदी के तट पर हड़प्पा नामक स्थल से भारत की कांस्य कालीन नागरिक सभ्यता के अवशेष मिले। इससे यह स्पष्ट हो गया कि भारत की सभ्यता के इतिहास की दृष्टि से विश्व की अन्य प्राचीन सभ्यताओं के समक्ष है और यह सभ्यता वैदिक संस्कृति के पूर्व पल्लवित हो चुकी थी। इस का विस्तृत स्वरूप जानने के लिए दयाराम साहनी ने हड़प्पा में उत्खनन किया। इस सभ्यता के अन्य स्थलों की खोज में रखलदास बनर्जी ने १९२२ मै सिंधु नदी के पश्चिमी तट पर लकराना जिले में, मोहनजोदडो नामक तिल से इस सभ्यता का दूसरा स्थल खोज निकाला। यहां से प्राप्त हड़प्पा शैली की पूरा वस्तुओं से यह स्पष्ट हो गया की ४०० मिल दूरी पर स्थित यह दोनों स्थल एक ही सभ्यता से संबंधित है। इन स्थलों से प्राप्त पुरातात्विक अवशेषों में एक अज्ञात लिपि में अभी लिखित ऐसी मुद्राएं सम्मिलित थी, जैसी बेबी लोनिया के कुछ स्थलों से तीसरी सहस्त्राब्दी ई.पू. के स्तरों से प्राप्त हुई थी। इन संकेतों से यह स्पष्ट होने लगा कि भारतीय सभ्यता सुमेरियन सभ्यता के समान पर्याप्त प्राचीन है। इसके परिणाम स्वरुप हड़प्पा और मोहनजोदड़ो स्थलों का विशाल पैमाने पर उत्खनन किया गया। माधोस्वरूप वत्स ने हड़प्पा में १९२५ से १९३१ तक; मार्शल, दीक्षित, हारग्रीव्ज, और सनाउल्लाह ने मोहनजो डरो में १९२५ से १९२७ तक विस्तार से उत्खनन किया। मार्शल के पश्चात १९३१ तक मैके ने मोहनजोदड़ो में उत्खनन कार्य जारी रखा। इसके बाद उसने १९३५-३६ मैं चहुंजोदडो का उत्खनन किया। पुरातत्व वेतन को इन सालों की जानकारी से संतोष नहीं मिला इसलिए मजूमदार, हारग्रीव्ज, और ओरेलस्टीन जैसे पूरा तत्व नेताओं ने सिंध और बलूचिस्तान में अन्य कांस्य कालीन स्थलों को खोजने का सफल प्रयास किया। १९३५ मैं माधोस्वरूप वत्स को काठियावाड़ में रंगपुर से सेंधव सभ्यता के अवशेष मिले तो व्हीलर ने हड़प्पा में १९५६ मैं पुन:उत्खन कार्य किया।

@2025 International Council for Education Research and Training 2025, Vol. 04, Issue 01, 23-32
ISSN: 2959-1376 DOI: https://doi.org/10.59231/SARI7775

बीज शब्द : संस्कृति, हड़प्पा शैली, पुरातात्विक, मुद्राएं, वैदिक संस्कृति आदि |

प्रस्तावना: इस समय तक विश्व भर के इतिहासकारों को भारतीय सेंन्धव सभ्यता से परिचय हो चुका था। सेंन्धव सभ्यता के विषय में तत्संबंधी ज्ञान का प्रमुख आधार व्हाट्सएप वत्स, मैके, मार्शल और व्हीलर द्वारा प्रकाशित हड़प्पा और मोहनजोदड़ो का पुरातात्विक विवरण था। उसी के आधार पर सेंन्धव सभ्यता की प्रकृति, प्रसार और प्राचीनता संबंधी रूपरेखा निश्चित की गई।

१९५७ मे देश का विभाजन हो जाने पर सेंन्धव सभ्यता के अधिकांश स्थल पाकिस्तान की सीमा में चले गए। इसके परिणाम स्वरूप एक ओर भारतीय पुरातत्ववेताओं ने भारत में सेंन्धव सभ्यता का विस्तार जानने के लिए राजस्थान, गुजरात और हरियाणा में ऐसे अनेक स्थल खोज निकाले जिनके अवशेष सेंन्धव सभ्यता के समान थे। तब से अब तक सिंधु और शुष्क धध्धर (प्राचीन सरस्वती) नदी की उपत्यका में ९०० से अधिक स्थल खोजे जा चुके हे। इनमें गुजरात में लोथल, राजस्थान में कालीबंगा, कच्छ में धोलावीरा तथा हरियाणा में राखीघढी सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुए जहां पर क्रमशः राव, बी.बी.लाल, आर.सी.विष्ट और अमरेंद्रनाथ ने विस्तार से उत्खनन किया। अन्य स्थलों में देसलपर, कुंतसी, पदरी, आलमगीरपुर, भगतराव, बणावलि, मीताथल, तथा सूरकोटड़ा का उल्लेख किया जा सकता है। उधर पाकिस्तान में भी इस सभ्यता के अन्य स्थल मेहरगढ़, अमरी, बालकोट, रहमान देहरी में देखे गए। इनमें कोर्टडीजी और नौशारो मैं उत्खनन भी किया गया। इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात के युग में भारत और पाकिस्तान में अनेक नये स्थलों की खोज और उत्खनन से भारत के पुरा ऐतिहासिक युग के विषय में हमारे ज्ञान में पर्याप्त विकास हुआ है। भारत में सरस्वती की उपत्यका में इस सभ्यता के अधिकांश स्थल केंद्रित होने के कारण अब इसे सिंधु-सरस्वती सभ्यता नाम दिए जाने का आग्रह किया गया।

प्राचीन भारतीय इतिहास से स्रोत अपर्याप्त, अनिश्चित तथा और अस्पष्ट है। डॉ.एल. बाशम के शब्दों में, " भारत का प्राचीन इतिहास एक पेचीदा समस्या के समान है, इसके कुछ अंश मिलते ही नहीं; कुछ भाग तो स्पष्ट है; अन्य कुछ भागों का ध्यानपूर्वक कल्पना द्वारा पुनः निर्माण किया जा रहा है; परंतु ऐसे कई खाली स्थान रह गये हैं जीने शायद कभी भी ना भरा जा सके। " (The early history of India resemble a jigsaw puzzle

@2025 International Council for Education Research and Training
ISSN: 2959-1376
2025, Vol. 04, Issue 01, 23-32
DOI: https://doi.org/10.59231/SARI7775

with many missing pieces, some parts of the picture are fairly clear, others may be reconstructed with the aid of a controlled imagination, but many gaps remain and may never be failed) इतिहासकारो ने प्राचीन भारतीय इतिहास के अपर्याप्त स्रोत होने के विभिन्न कारण बताए हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

१. प्राचीन काल के भारतीयों में ऐतिहासिक रुचि का अभाव

२. हिंदुओं की धर्म तथा दर्शन में अधिक रुचि

३. भारत की जाति प्रथा

४. प्राचीन भारत में एकता का अभाव

५. प्राचीन काल के भारतीयों का इतिहास संबंधी विशेष दृष्टिकोण

६. प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथों का नष्ट हो जाना

७. विभिन्न सम्वतों का प्रयोग

इन सब कारणों के परिणाम स्वरूप हमारा प्राचीन भारतीय इतिहास का ज्ञान अपर्याप्त तथा अनिश्चित है। यह ठीक है कि यूरोपीयन तथा भारतीय विद्वानों के गंभीर अनुसंधानों ने कई समस्याये सफलतापूर्वक सुलझा दी है, परंतु फिर भी प्राचीन काल का हमारा ज्ञान पूर्ण रूप से निश्चित नहीं हो पाया। अब तक महत्वपूर्ण घटनाओं तथा राजाओं और धार्मिक नेताओं से संबंधित तिथियो के विषय में विद्वानों का मत एक नहीं है और कुछ कालों के संबंध में तो ऐसे खाली स्थान रह गये हैं जिन्हे घोर परिश्रमो के बावजूद भी प्राचीन भारतीय इतिहास के विद्वान पूरा करने में असफल रहे है।

भारत के पुरातत्व में दिलचस्पी की शुरुआत अतीत को समझने और वर्तमान को उदभासित करने में सहायता देने के लिए ऐतिहासिक अवशेषों के संग्रह की ओर अभिमुख उन्नीसवीं साड़ी के उत्तरार्ध के क्रियाकलाप से होती है। प्रागितिहास के निर्माण के उपादान का काम करने वाले पूरावशेषों की तलाश को विश्व के अन्य भागों के साथ किए गए तुलनात्मक अध्ययनो और तज्जनित समानताओ या असमानताओं की पहचान से प्रोत्साहन मिला। आरंभ में ऐतिहासिक काल के पूरावशेषो मैं मुख्य रूप से ऐसी वस्तुएं शामिल थीं जिनका वर्गीकरण बाद में कालवशैषो के रूप में किया गया। उत्खनित सामग्री की व्याख्याएं पिछली सदी के दौरान प्रचलित हुई और उनमें समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हे। सन १९२० और १९३० वाले दशकों में सेंधव नगरों की खुदाई से भारतीय पुरातत्व को एक नई दिशा प्राप्त हुई। आरंभ में ऐसा माना गया कि ये नगर शायद पश्चिम एशियाई सभ्यताओं द्वारा भारत के उपनिवेशीकरण की दिन थे। बाद में जब मार्टीमर व्हीलर ने उत्खनन की प्रविधियो और तारीको में परिवर्तन करके उन्हें अधिक कठोर बना दिया तब भी इस धारणा का

@2025 International Council for Education Research and Training
ISSN: 2959-1376
2025, Vol. 04, Issue 01, 23-32
DOI: https://doi.org/10.59231/SARI7775

साया मिट नहीं पाया। अब सोच अंशत:उलटी दिशा में चल रही है, क्योंकि कुछ पुरातत्वज्ञ हड़प्पई संस्कृति को पूर्ण रूप से देशी मिट्टी की उपज और बाद की संस्कृतियों की जननी मनाना पसंद करेंगे।

पुरातत्व से भारत में जिन समाजों के साक्ष्य मिलते हैं उनकी रूपरेखाएं मोटे तौर पर उन समाजों से मिलती-जुलती है जो विश्व के इसके निकटवर्ती भागों में मौजूद थे, यद्यपि नि:संदेह दोनों के बीच अलग-अलग परिवेशगत संदर्भों से उत्पन्न कुछ भिन्नताए भी थी। जिन बस्तियो और संस्कृतियों को पूरा पाषाणिक, मध्य पाषाणिक, नव पाषाणिक, ताम्रपाषाणिक और लौह बस्तियां तथा संस्कृतियां कहां गया है उनके जाने-पहचाने रूपों का अनुसरण करते हुए उन समाजों के वितरण-पथो की रूपरेखा का निर्देश किया जा सकता है। इस उपमहाद्वीप में यह सभी समाज क्रमिक रूप से एक से निकलकर दूसरे के रूप में विकसित नहीं हुए और न उनमें काल की दृष्टि से एकरूपता थी। फिर भी जिन्हे प्रागितिहास (Pre-History) और आध इतिहास (Proto-History) कहा जाता है उनके सर्वेक्षण से प्राचीन इतिहास की पूर्व पीठिका का भान हो जाता है।

सेंधव सभ्यता के बाद के काल के इतिहास के आरंभ का वर्णन माने जाते हैं, क्योंकि वे पाठगत स्रोतों पर आधारित है। औरों की तरह इस आरंभ की तस्वीर भी पुरातात्विक तथा पाठगत सामग्री के ही आधार पर गढ़ी जाती है, लेकिन इन दोनों को व्यवस्थित रीति से एक-दूसरे में गुथना बहुत कठिन काम है। पुरातत्व से विविध प्रकार की अनेक संस्कृतियों के अस्तित्व का पता चलता है, जिनमें से अधिकांश ताम्रपाषाणिक है। इनमें से कुछ तो परस्पर अंतर्संबद्ध है और कुछ एक-दूसरे के अगल-बगल में स्थित। दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. के उत्तरार्ध और पहली के पूर्ववर्ती की भौतिक संस्कृति के साक्ष्य अपेक्षाकृत स्पष्ट है और कभी-कभी इनका उपयोग पाठों के वर्णनो के लिए प्रति-साक्ष्यो के रूप में भी किया जा सकता है। परेशानी तब पैदा होती है जब पाठों में उल्लिखित समूहो के साथ में संस्कृतियो का संबंध दिखलाने की कोशिश की जाती है। और पाठ पाठ अनेक प्रकार के हैं, जिनके वर्णन एक-दूसरे से भिन्न है और जिनमे निर्द्रीष्ट तिथियां भी अलग-अलग है, लेकिन सबको आरंभ के वर्णन से ही संबोधत माना जाता है। जो पाठ वैदिक साहित्य के घटक बने और इसी काल के थे उनकी शुरुआत आनुश्रुतिक परंपरा के रूप में हुई, जिसे पूरी शुद्धता के साथ कंठस्थ कर लेना होता था। कई सदी बाद इन पाठो को लिखित रूप दिया गया। अतीत का वर्णन करने का दावा करनेवाले अन्य पाठो की शुरुआत भी आनुश्रुतिक

@2025 International Council for Education Research and Training
ISSN: 2959-1376
2025, Vol. 04, Issue 01, 23-32
DOI: https://doi.org/10.59231/SARI7775

परंपरा के रूप में ही हुई। इनमें रामायण और महाभारत महाकाव्य तथा पुराण मुख्य है। इन्हें अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता के साथ कंठस्थ किया जाता था और समय-समय पर इनमें कुछ नए हिस्से जोड़ भी दिये है जाते थे। इन्हें अपने वर्तमान रूप में पहली सहस्राब्दी ई.पू. के आरंभ में लिपिबद्ध किया गया।

भारतीय इतिहास के आरंभ की कथा बांटने वाले पौराणिक विवरण मुख्य रूप से एक सुविदित विषय के विविध रूप है। ये विवरण, उदाहरणार्थ, विष्णु पुराण और मत्स्य पुराण में मिलते हैं। विवरण यह है कि पृथ्वी पर मनु शासन करते थे। पहला मनु स्वयंभू था। जो सीधे ब्रह्मा से उत्पन्न हुआ था। सातवें मनु के काल में महाप्रलय हुआ और पूरी सृष्टि जलमग्न हो गई। भगवान विष्णु ने मनु को इस प्लावन की चेतावनी दे दी थी और उसे अपने परिवार और साथ आदि ऋषियों की रक्षा के लिए एक नौका बनाने को कह दिया था। विष्णु ने एक विशाल मछली का रूप धारण कर लिया। नवका उसके सिंग में बांध दी गई, जिसे मछली ने एक पहाड़ की चोटी तक पहुंचा दिया। पानी घटने तक मनु यहीं रुक रहा, इसके बाद ही सब अपने घर सुरक्षित लौट पाए। मनु की संताने अनेक वंशों के पूर्वज हुई। बाद के राजा अभीजात्य की तलाश के क्रम में इन्हीं में से किसी को अपना पूर्वज बताने लगे। कथा के कुछ रूपों के अनुसार, मनु का जेष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु सूर्यवंश का पूर्वज था और कनिष्ठ संतान इला चंद्रवंश की पूर्वजा थी। कुछ विवरण में इलाकों उभयलिंगी भी बताया गया है।

आज अनुवांशिकी आंकड़ों के आधार पर हम यह पूरी दृढ़ता से यह कहाने की स्थिति में है कि इसी अंतर- हिमानी युग विशेष में भारतीयों ने सर्वाधिक प्रवसन किया और पुराने विश्व के अधिकांश भागों में जहां बसे। आज इस बात में रत्तीभर भी संदेह की गुंजाइश नहीं बची है की भारत में मनुष्य मध्य एशिया, पश्चिम एशिया अथवा ईरान से नहीं आया। इससे यह भी प्रमाणित हुआ है कि अनुवांशिक रूप में उत्तर भारतीय और द्रविड़ के साथ-साथ भारतीय जातियां और जनजातीया सभी भारत में ही मूल रूप से पैदा हुई है, जो १,००,००० वर्षों से ज्यादा अवधि में साथ-साथ विकसित हुई (माउंटेन, १९९५; क्रीनटाना-मर्की, १९९९; राय चौधरी एवं अन्य, २०००; राय चौधरी एवं अन्य, २००१; मजूमदार,२००१; वीर राजू एवं अन्य; राय चौधरी एवं अन्य, २००२; किविसिल्ड एवं अन्य, २००३; कोरडॉक्स एवं अन्य,२००४; मेट्सपालु, २००४; शर्मा एवं अन्य, २००५; काश्यप एवं अन्य,२००६; माजी एवं अन्य, २००८; रिच एवं अन्य, २००९) अनुवांशिकी अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ

@2025 International Council for Education Research and Training
ISSN: 2959-1376
2025, Vol. 04, Issue 01, 23-32
DOI: https://doi.org/10.59231/SARI7775

है कि भारतीयों के पुरखे ही चीना, मध्य एशियाई, यूरोपीय और पश्चिम एशियाई के आदि पुरुष है।

भारतवर्ष की दार्शनिक विचारधारा भारतीय इतिहास लिखने के प्रयत्नों में सदैव ही बाधक रही है। भारत में आध्यात्मिक विकास से ही सदेव जीवन का मुख्य दे रहा है। भारतवासी परिश्रम की अपेक्षा युगपरंपरा को तथा मानवीय भौतिक घटनाओं की अपेक्षा विचारधाराओं को ही महत्व देते रहे हैं। इसी दार्शनिक विचारधारा के कारण उनके लिए ऐतिहासिक व्यक्तियों का स्थान सत्य, सिद्धांत, रूपक आदि ले लेते थे। अतः मानवीय गाथाओं का वर्णन वे निरर्थक अलाप ही समझते थे। इसी कारण भारत में महान सम्राट के इतिहास का पूर्ण परिचय प्राप्त कर लेना यदि संभव नहीं तो दूरस्तर अवश्य है। न जाने कितनी महान विभूतियां इस भारतीय विचारधारा के कारण आज अपना अस्तित्व तक हो चुकी है। और जो दीपक के प्रकाश के समान भिल लमिला भी रही है, रूढ़ियो तथा परंपराओं पर आधारित दंतकथाओं से इतनी उलझ गई है कि उनके विशुद्ध रूप का दर्शन तथा कार्यों का मूल्यांकन करना असंभव हो गया है। इतना होने पर भी भारतीय इतिहास को विश्व के प्राचीनतम इतिहास में विशिष्ट एवं द्वितीय स्थान प्राप्त है। भारतीय सभ्यता प्राचीनतम ही नहीं किंतु गौरवपूर्ण और प्रगतिशील रही है। आज तक की अन्य अनेक प्राचीन सभ्यता हो चुकी है, भारतीय सभ्यता जीवित ही नहीं, अपितु आधुनिक युग में उपयोगी भी अंतद्वंद का एकमात्र समाधान भारतीय दर्शन और आध्यात्मवाद प्रदान करता है। यह भारतीय सभ्यता की अपनी एक पृथक विशेषता है। यह बहुत कुछ भारत की भौगोलिक परिस्थितियों के कारण है। इतिहास अतीत और वर्तमान में युवाओं की लंबी दूरी को काम करके निकट संबंध स्थापित करने का माध्यम है। सत्य इतिहासकारों का यह आरोप रहा है की प्राचीन भारत का इतिहास जानने का कोई विश्वास नहीं है साधन नहीं है। फ्लीट महोदय के सम्मुख तो यह प्रश्न होता है कि क्या प्राचीन काल के हिंदुओं की अभिरुचि इतिहास रचने की ओर थी? इसे कभी-कभी प्राचीन भारतीयो में इतिहास रचने की शक्ति के विषय में भी शंका व्यक्त की जाती है। अल्बेरूनी ने भी इस उदासीनता का उल्लेख किया है की प्राचीन भारतीयों से यदि किसी समय या काल का इतिहास या इस समय की किसी घटना विशेष के बारे में पूछा जाता है, तो वे कथाएं कहना प्रारंभ कर देते हैं। किसी समय हास परिहास मे विद्वान कह दिया करते थे कि " India has no history but episodes " अर्थात भारतवर्ष का तो कोई इतिहास नहीं है।

@2025 International Council for Education Research and Training
ISSN: 2959-1376
2025, Vol. 04, Issue 01, 23-32
DOI: https://doi.org/10.59231/SARI7775

प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालयो मे नालंदा नाम सबसे ऊपर आता है। पांचवी से दसवीं शताब्दी तक वह भारत के उच्च शिक्षा का सबसे बड़ा केंद्र था। कहा जाता है कि यह विश्वविद्यालय कोई साथ मिल तक फैला हुआ था। खुदाई में कोई १४ भवनो के अवशेष मिले हैं। प्रत्येक भवन में एक बड़ा आंगन, एक पूजा-गृह, एक कुआं और अनेक कमरे बने हुए थे। कुछ भवन तो इतने ऊंचे थे कि, हैंनसांग के शब्दों में, वे आकाश से बात करते थे। इस विश्वविद्यालय में लड़कों के ठहरने के कमरो और गुरुओ के निवास स्थानो आदि का अलग-अलग प्रबंध था। इसमें अनेक वेधशालाये और पुस्तकालय बने हुए थे।

इस विश्वविद्यालय की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। प्राचीन भारत में बौद्ध शिक्षा का यह सबसे बड़ा केंद्र था। इसे ठीक ही महायान बौद्ध मत का ऑक्सफोर्ड (Oxford of Mahayana Buddhism) कहा जाता है। इसमें पढ़ने के लिए विद्यार्थी केवल भारत के ही विभिन्न प्रांतो से नहीं आते थे बल्कि चीन, तिब्बत, मध्य एशिया, बुखारा, कोरिया व अन्य दूर-दूर के देशों से विद्यार्थी एवं विद्वान भी यहां उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए आया करते थे। विदेशी विद्यार्थियों में हैंनसांग (Hieun Tsang) और इत्सिंग (Itsing) आदि के नाम विशेष कर उल्लेखनीय है। हेनसांग ने पांच वर्ष और इत्सिंग ने इससे भी अधिक समय नालंदा विश्वविद्यालय के आचार्य के चरणों में बैठकर विद्या ग्रहण की।

इस विश्वविद्यालय ने विदेश में भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के फैलाने में बड़ा भाग लिया। विदेश से हेनसांग, इत्सिंग, ताओसिंग, तांग और आर्य वर्मन जैसे जो लोग आए उन्होंने भी अपने देश वापस लौट कर भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का बहुत गुणगान किया। इनके प्रयत्नों और शांत रक्षित तथा पद्मसंभव जैसे भारतीय प्रचारकों के कारण, जो नालंदा विश्वविद्यालय की ही उपज थे, भारतीय संस्कृति चीन, मध्य एशिया, तिब्बत आदी दूर-दूर के देशों से फैल गई। डॉ.आर सी मजूमदार ने नालंदा विश्वविद्यालय के महत्व विषय में लिखा है, " नालंदा का विश्वविद्यालय शिक्षा के उच्चतम आदर्शो का मूर्त रूप था तथा भारत में एशिया के प्रदर्शक के रूप में जो महान सफलता प्राप्त की थी, उसका यह जीवित स्मारक था। "

प्राचीन भारतीय वांग्मय से तक्षशिला की प्राचीनता प्रमाणित है। रामायण और महाभारत में इसका उल्लेख मिलने पर भी यह आश्चर्यजनक है कि रामायण और महाभारत कालीन कोई भी भौतिक अवशेष उत्खनन से नहीं प्राप्त हो सके हैं। बौद्ध जातकों, महावग्ग और धम्मपद की पटकथाओं में विद्या केंद्र के रूप में उल्लिखित तक्षशिला से शिक्षा प्राप्त आचार्य की एक लंबी सूची भी दी गई है।

@2025 International Council for Education Research and Training
ISSN: 2959-1376
2025, Vol. 04, Issue 01, 23-32
DOI: https://doi.org/10.59231/SARI7775

दीपवंश और अवदान कल्पलता में यहां के राजाओं का वर्णन है। जैन ग्रंथों अनुसार करोड़ों वर्ष पूर्व आदि तीर्थंकर ऋषभदेव तक्षशिला गए थे। तक्षशिला के प्राचीन सिक्के पर्शियन मानदंड के है। ग्रीक इतिहासकारों ने इस नगर का विस्तृत उल्लेख किया है। ग्रीक साहित्य में टीबी रोनाबो के रूप में तामडा नाले की चर्चा हुई है। दोनों सुप्रसिद्ध चीनी यात्रियों ने भी तक्षशिला का विशद वर्णन प्रस्तुत किया है। यह विश्वविद्यालय पांचवी से बारहवीं शताब्दी तक फलता-फूलता रहा और अंधकार के आवरण को हटाता रहा। अंत में १२वीं शताब्दी में मुसलमान आक्रमणकारियों (विशेष कर मोहम्मद गौरी के एक सेनापति बख्तियार खिलजी) ने विश्वविद्यालय को बहुत हानि पहुंचाई और इसके पुस्तकालय को जलाकर राख कर दिया।

तक्षशिला : तक्षशिला के प्राचीन खंडहर पाकिस्तान के रावलपिंडी से उत्तर पश्चिम में २२ मील दूर सिंधु और झेलम नदियों के मध्य स्थित है। इन खंडहरों के पूर्व में पहाड़ियों की ढलान समाप्त होती है। तक्षशिला के इन प्राचीन अवशेषों वाली घाटी की लंबाई और चौड़ाई क्रमशः ११ मील और ५ मील है। समुद्र तल से मैदानो की औसत ऊंचाई १८०० फीट है एवं पूर्वक की पहाड़ियां लगभग ८ हजार फीट तक ऊंची हे। में भारी पहाड़ियों की एक श्रेणी हथियाला, अपेक्षाकृत काम ऊंची है। तक्षशिला घाटी को दो और सामान भागों में विभक्त करती हैं। इनमें उत्तर का भाग दक्षिण से बड़ा है। दक्षिणी भाग में दक्षिणा पूर्व से उत्तर पश्चिम की ओर बहने वाला तामड़ा और उत्तर में लुण्डी नामक दो नाले इस घाटी को तीन हिस्सों में बताते हैं। इनमें तक्षशिला के तीन प्राचीन नगर स्थित है :

१. तामड़ा के दक्षिण में भीर
२. तामड़ा और लूंडी के मध्य सिरकप
३. लुंडी के उत्तर में सिरसुख

तक्षशिला गांधार देश की राजधानी थी। अफगानिस्तान का वर्तमान पूर्वी भाग गांधार देश कहलाता था। उसे काल में संभवत: काश्मीर भी इसके अंतर्गत आता था। यो तो गांधार की चर्चा ऋग्वेद में भी मिलती है, किंतु तक्षशिला की जानकारी सर्वप्रथम आदि काव्य अर्थात रामायण से होती है।

भारतीय इतिहास में तक्षशिला नगरी विद्या और शिक्षा के महान केंद्र के रूप में प्रसिद्ध थी। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक काल की कुछ अंतिम शताब्दीयो के पूर्व उसकी ख्याति बहुत नहीं हो पाई थी। किंतु बौद्ध युग में तो यह नगरी विद्या का सर्वमुख्य केंद्र थी। यद्यपि बौद्ध साहित्य के प्राचीन सूत्रों में उसकी चर्चा नहीं मिलती, तथापि जातकों में उसके वर्णन भरे पड़े हैं एल त्रिपिटक की टीका ओ और पटकथाओं से भी उसकी अनेक बातें ज्ञात

@2025 International Council for Education Research and Training
ISSN: 2959-1376
2025, Vol. 04, Issue 01, 23-32
DOI: https://doi.org/10.59231/SARI7775

होती है। तदनुसार बनारस, राजगृह, मिथिला और उज्जयि नी जैसे भारत के दूर-दूर के क्षेत्रो से विद्यार्थी तक्षशिला पढ़ने के लिए जाते और विश्व प्रसिद्ध गुरुओ से शिक्षा प्राप्त करते थे। तिलमुष्टी जातक के अनुसार वहां का अनुशासन अत्यंत कठोर था और राजाओं के लड़के भी यदि बार-बार दोष करते तो पीते जा सकते थे। वाराणसी के अनेक राजाओं (ब्रह्मदतो) के अपने पुत्रों, अन्य राजकुमारो और उत्तराधिकारियों को वहां शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजने की बात जातकों से ज्ञात होती है।

भीर, सिरकप और सिरसुख - तक्षशिला के ये तीनों नगर अलग-अलग समय पर बताए गए थे। उत्खनन में प्राप्त सिक्कों, अभीलिखो, मुहरो आदि की सहायता से इन तीनों के विषय में समुचित ज्ञान प्राप्त होता है।

जैसा कि सर जान मार्शल ने दिखाया है तक्षशिला के स्तर से पता चलता है कि वहां शासन कर रहे शक शासको मे मावीज प्राचीनतम था। कोनोव ने यह विचार प्रकट किया है कि अपने नामके स्वरूप से मावीज की-पिन के शकों से समृद्ध होता है क्योंकि भाषा शास्त्रीय दृष्टिकोण से यह शब्द मध्य-एशियायी भाषाओं के परिवार से संलग्न है। मावीज की तिथि पर्याप्त विवाद का विषय रही है। इस प्रसंग में दो साक्ष्यो से सहायता ली जाती है :

१. मुद्रा शास्त्रीय साक्ष्य

२. वर्ष ७८ मे तिथ्यांकित तक्षशिला ताम्र-पत्र में मग नामक शासक की चर्चा हुई है, इस मोग का तादात्म्य मावीज से किया जाता है तथा ताम्रपत्र में अंकित की तिथि को किसी सवंत विशेष के साथ सबद्ध किया जाता है।

पांचवी सदी में हुणोने भारत पर जो द्वंसक आक्रमण किये, उनमें तक्षशिला नगर भी ध्वस्त हो गया। वस्तुत: तक्षशिला के विद्या केंद्र का ह्रास शको और उनके युची उत्तराधिकारियों के समय से ही प्रारंभ हो गया था। गुप्तों के समय जब फाहियांन वहां गया, तो उसे वहां विद्या के प्रचार का कोई चिन्ह प्राप्त नहीं हो सका था। वह उसे चॉशशिलो कहता है। हुणोके आक्रमण के पश्चात भारत आने वाले दूसरे चीनी यात्री सातवीं सदी के युवान चांग को तो वहां की पुरानी श्री बिल्कुल ही हत मिली। उसे समय वहां के बौद्ध भिक्षु दुखी व्यवस्था में थे तथा प्राचीन बौद्ध विहार और मठ खंडहर हो चुके थे। असभ्य हुणो की दुर्दांत तलवारोंने भारतीय संस्कृति और विद्या के एक प्रमुख केंद्र को ढाह दिया था।

इतिहास का धरातल एक विशिष्ट प्रकार की वस्तु से और स्रोत रहता है। इतिहास में सत्य का अंश न्युनाधिक रूप में वैसा ही है, जैसा विज्ञान और दर्शनों का होता है। जिस प्रकार विज्ञान और दर्शन

@2025 International Council for Education Research and Training
ISSN: 2959-1376
2025, Vol. 04, Issue 01, 23-32
DOI: https://doi.org/10.59231/SARI7775

में हेर फेर होते हैं, इस प्रकार इतिहास के चित्रण में भी होते रहते हैं। मनुष्य के बढ़ते हुए ज्ञान और साधनों की सहायता से इतिहास के चित्रों का संस्कार, अपने-अपने प्रश्न उठता है और इतिहास से उनका समाधान ढूंढता रहता है। इसीलिए प्रत्येक युग, समाज अथवा व्यक्ति इतिहास का दर्शन अपने प्रश्नों के दृष्टि बिंदुओं से करता रहता है। यह सब होते हुए भी साधनों का वैज्ञानिक अन्वेषण तथा निरीक्षण, कालकम का विचार, स्थिति की आवश्यकताओं तथा घटनाओं के प्रवाह की बारीकी से छानबीन और उनसे परिणाम निकलने में सतर्कता तथा संयम की अनिवार्यता अत्यंत आवश्यक है। इनके बिना ऐतिहासिक कल्पना और कपोल कल्पना मैं कोई भी भेद नहीं रहता है।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय इतिहास के अनगिनत तथा नाना प्रकार के स्रोत है, जो बिखर पड़े हैं। इन स्रोतों के सूक्ष्म तथा आलोचनात्मक अध्ययन के फल स्वरुप प्राचीन भारतीय इतिहास का क्रमबद्ध निर्माण किया जा रहा है, परंतु स्रोतों के अपर्याप्त तथा अपूर्ण होने के कारण कई समस्याओं को नहीं सुलझाया जा सकता। पुरातत्व संबंधी विभाग की खोजे तथा विद्वानों के अनुसंधान जारी है। अतः प्राचीन भारत के कुछ धुंधले पहलुओं पर प्रकाश पड़ने की आशा की जाती है।

: संदर्भ :

१. शिवकुमार गुप्त, “ प्राचीन भारत का इतिहास (प्रारंभ से ७८ ई तक) ”, प्रथम संस्कर, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, १९९९

२. भार्गव डॉ.वी.एस, “ प्राचीन भारत का इतिहास ”, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, २०११

३. शर्मा रामशरण, “ प्रारम्भिक भारत का इतिहास ”, ओरिएंट ब्लेकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, २०१२

४. गुप्त डॉ.मानिक, “ भारतीय इतिहास-भाग-१ ”, एटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीबूटर्स(प्रा.)लिमिटेड, दिल्ली, २०१५

५. कट्टटीमनी डॉ.एस.आर., “ प्राचीन भारत का संक्षिप्त इतिहास ”,ए.बी.एस.पब्लिकेशन,प्रथम संस्करण, वाराणसी, २०१८

Received on Sep 20, 2024
Accepted on Nov 30, 2024
Published on Jan 01, 2025

प्राचीन भारत की पृथक विशेषता © 2025 by मृगेश एम° नायक is licensed under CC BY-NC-ND 4.0